फरवरी १९९७ हिंदी पत्रिका में प्रकाशित

आत्मकथनः शिविर संस्मरण

बांध खुल गया

पूज्य गुरुदेव सयाजी ऊ बा खिन की यह सुदृढ़ मान्यता थी कि भगवान बुद्ध के महापरिनिर्वाण के पच्चीस सौ वर्ष पूरे होने पर द्वितीय बुद्ध शासन आरंभ होगा। और वह विपश्यना साधनाजन्य प्रज्ञा से ही आरंभ होगा। ब्रह्म देश में चिर-संरक्षित विपश्यना विद्या पहले अपनी उद्गम भूमि भारत लौटेगी और तदनन्तर सारे विश्व में फैल कर अमित लोक कल्याण करेगी।

पच्चीस सौ वर्ष पूरे होते-होते १९५४ से १९५६ तक यांगों (रंगून) में ऐतिहासिक छठे संगायन का आयोजन चल रहा था। इसी बीच १ से ११ सितंबर, १९५५ के शिविर में मुझे पू. गुरुदेव के चरणों में बैठ कर भगवती विपश्यना विद्या के अभ्यास द्वारा नया जन्म मिला। इसके पश्चात पू. गुरुदेव के मार्गनिर्देशन में चौदह वर्षों तक मेरा प्रभूत कल्याण करती हुई यह भगवती विद्या लगभग दो हजार वर्षों के लंबे अंतराल के बाद २५ जून १९६९ के दिन भारत लौटी। अपनी योग्यता और क्षमता के प्रति मेरे मन में उठी हुई हजार शंकाओं के बावजूद यह विद्या भारत में अपनी जड़ें जमाने लगी। मुझे लगा कि मैं तो केवल एक माध्यम मात्र हूं। धर्म अपना काम स्वयं कर रहा है। गुरुदेव बारबार कहा करते थे कि विपश्यना का डंका बज चुका है। इस समय भारत और विश्व के अन्यान्य देशों में पुण्य पारमीसंपन्न अनेक लोग जन्मे हैं। इस डंके की आवाज सुन कर वे स्वतः धर्म की ओर खिंचे चले आएंगे और विपश्यना को सहर्ष अपना लेंगे। ऐसा ही हुआ। अत्यंत अप्रत्याशित ढंग से भारत के भिन्न-भिन्न प्रदेशों के, भिन्न-भिन्न संप्रदायों के, भिन्न-भिन्न मत-मतान्तरों के अनेक लोग शिविरों में सम्मिलित होने लगे। इन संप्रदायों के प्रमुख सम्मिलित होने लगे। सभी को यह विद्या अपनी-सी लगी। किसी को कोई परायापन नहीं लगा।

शिविरों में विपश्यना का प्रशिक्षण हिंदी भाषा में ही दिया जाता था। अधिकांशतः उत्तर भारत के लोग ही सम्मिलित होते थे, क्योंकि शिविर इसी क्षेत्र में लगते थे। परंतु कुछ एक महीने बीतते-बीतते इन शिविरों में पश्चिम देशों के कुछ लोग भी सम्मिलित होने लगे। उन दिनों इनकी संख्या थोड़ी ही होती थी। सांयकाल हिंदी में धर्म प्रवचन देने के बाद मैं इन्हें पांच-दस मिनटों में अपने प्रवचन का संक्षिप्त सार अंग्रेजी में समझा दिया करता था और विधि के सक्रिय अभ्यास करने का आदेश भी चंद शब्दों में ही दे दिया करता था। ये लोग बहुत उद्यमी थे और गंभीरतापूर्वक काम करने के कारण अंग्रेजी भाषा का इतना-सा प्रयोग इनके लिए पर्याप्त था। इन्हें आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त होती थी। धीरे-धीरे इस विद्या की प्रशंसात्मक चर्चा पश्चिम से आने वाले अन्य पर्यटकों में भी फैलने लगी। एक वर्ष बीतते-बीतते डलहौजी में ठहरे हुए इन पर्यटकों के एक समूह ने मुझसे मांग की कि मैं वहां जाकर केवल उन्हीं के लिए एक शिविर लगाऊं। मेरे लिए कठिनाई थी। केवल विदेशियों का शिविर होगा तो संपूर्ण शिविर संचालन अंग्रेजी भाषा में ही करना पड़ेगा। कुछ शब्दों में प्रवचन का सार समझा देना, एक-दो वाक्यों में साधना के अभ्यास का निर्देश दे देना, अथवा किसी प्रश्न का थोड़े में उत्तर दे देना सरल था। किंतु हिंदी की भांति अंग्रेजी में घंटे भर धाराप्रवाह प्रवचन देना और दिन भर प्रेरणाभरे लंबे-लंबे निर्देश देते रहना मेरे लिए सर्वथा असंभव था। रंगून रहते हुए जब कभी मुझे चेंबर आफ कॉमर्स एंड इंडस्ट्री के अध्यक्ष की हैसियत से अथवा अन्य कहीं किसी महत्त्वपूर्ण, सार्वजनिक समारोह में अंग्रेजी में भाषण देना पड़ता था तो लिखित वक्तव्य ही पढ़ कर सुना दिया करता था। बिना पढ़े अंग्रेजी में भाषण देने का मुझे कतई अनुभव नहीं था और न ही इसकी क्षमता थी। वैसे ही अंग्रेजी भाषा का ज्ञान सीमित था, तिस पर साधना संबंधी प्रवचन, जिसमें कि भारतीय आध्यात्मिक परंपरा के अनेक पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग होता है, उनका अंग्रेजी पर्याय जानना मेरे लिए और भी कठिन था। अतः मैंने अपनी असमर्थता प्रकट की और उन्हें समझाया कि जहां कहीं हिंदी भाषा का शिविर लगता हो, वहां थोड़ी-थोड़ी संख्या में आते रहें। उन्होंने कहा कि हिंदीभाषी साधक-साधिकाएं मेरे सायंकालीन प्रवचन से और लंबे आदेशों से बहुत प्रभावित होते हैं और सारी विद्या को भलीप्रकार हृदयंगम करके काम करते हैं। जबकि विदेशी इस लाभ से वंचित रह जाते हैं। अतः मुझे अंग्रेजी में शिविर लगाना चाहिए। उनकी नजरों में इतनी अंग्रेजी तो मैं बखूबी जानता ही था। परंतु मेरे न मानने पर उन्होंने पू. गुरुदेव से संपर्क स्थापित किया और उनसे मेरी शिकायत की। उन्होंने कहा कि बर्मा के बाहर आपका केवल एक ही प्रतिनिधि इस विद्या को सिखा रहा है और वह हमारी मांग को स्वीकार नहीं कर रहा। हम यह विद्या सीखने कहां जायँ? उन दिनों बर्मा में तीन दिन से अधिक का वीसा नहीं मिलता था। अतः उन्होंने पू. गुरुदेव पर दबाव डाला कि वे मुझे अंग्रेजी में शिविर लगाने की आज्ञा दें। उन दिनों मैं बंबई में था। गुरुजी ने मुझे बंबई फोन किया और आदेश दिया कि मैं तुरंत डलहौजी जाकर अंग्रेजी में शिविर लगाऊं। जब मैंने उनके सामने अपनी कठिनाई प्रकट की तो उन्होंने बड़ी प्यारभरी कठोरता के साथ आज्ञा दी –"तुम्हें जाना ही होगा। जैसी भी अंग्रेजी आती है, उसी में शिविर लगाना होगा। सफलता मिलेगी ही। धर्म सहायता करेगा। सफलता के बारे में जरा भी चिंता करने की आवश्यकता नहीं है। मेरी समस्त मंगल मैत्री तुम्हारे साथ है।" पू. गुरुदेव का इतना आश्वासन भरा आदेश पाकर मैं शिविर लगाने के लिए डलहौजी चला गया।

डलहौजी जाने की हिचकिचाहट अवश्य थी, परंतु फिर भी वहां के लिए एक बहुत बड़ा आकर्षण भी मेरे मानस में था। हिमालय की गोद में यह मेरा पहला शिविर लगेगा। "हिमालयो नाम नगाधिराजः" की हिमाच्छादित शिखर-श्रंखलाओं का खिंचाव, तिस पर पू. गुरुदेव के वे बोल भली भांति स्मरण थे जबकि एक बार

उन्होंने कहा था कि हम हिमालय की प्रशांत गुफाओं में, कंदराओं में न जाने कितने जन्मों में कितने दिनों तपे हैं। अतः कुछ झिझक के बावजूद डलहौजी जाने का आदेश प्रिय ही लगा। वहां पहुँचते ही मनमानस में आह्लाद, उल्हासभरी उमंगों की उच्छल ऊर्मियां तरंगित होने लगी। इस उत्साह के प्रवाह में अंग्रेजी में शिविर लगाने की शंकाएं न जाने कहां बह गयीं।

परंतु फिर भी शिविर आरंभ करने पर दो दिनों तक धर्मपीठ पर बैठे हुए अत्यंत अप्रत्याशित रूप से घुटन महसूस होती थी। अतः पहली शाम केवल पंद्रह मिनट ही बोल पाया। दूसरी शाम बड़ी कठिनाई से बीस-पच्चीस मिनट तक बोलते-बोलते दम घुटने लगा। यद्यपि चेतन चित्त में रंचमात्र भी यह प्रतीत नहीं हो रहा था तथापि मुझे यों लगा कि शायद खुल कर अंग्रेजी न बोल सकने की हीनग्रंथि अंतर्मन में अड़चनें पैदा कर रही होंगी। परंतु इस घुटन का वास्तविक कारण कुछ और ही निकला जो कि तीसरे दिन प्रकट हुआ।

कुल ग्यारह साधक-साधिकाओं का यह छोटा-सा शिविर था। शांतिकुटीर नामक एक छोटे-से बंगले में यह शिविर लगा था। सामूहिक साधना और प्रवचन का कार्यक्रम भी एक छोटे कमरे में होता था। उस कमरे से सटे हुए दूसरे कमरे में वह साधक रहता था जिसने कि शिविर के लिए मुझे आमंत्रित किया था। तीसरे दिन मैंने देखा, उसी कमरे में से एक प्रकार की धर्मविरोधी दूषित तरंगें फूटती थीं जिनसे कि सामूहिक ध्यान-कक्ष घुटन से भर उठता था। समझ में नहीं आ रहा था कि एक ओर हिमालय की पावन तरंगें, दूसरी ओर पू. गुरुदेव की प्रबल मैत्री, जिनके रहते ये कैसी दूषित तरंगें हैं जो घुटन पैदा कर रही हैं। तीसरे दिन दोपहर को मैं उस साधक को चैक करने के लिए पास वाले कमरे में गया तो यह देख कर आश्चर्यचकित रह गया कि उसकी टेबल पर एक अस्थि कंकाल्वाला नरमुंड पड़ा है और समीप ही सूखे हुए खून के रंग में रंगी एक नेपाली खुखरी पड़ी है। पूछने पर उसने बताया कि वह किसी स्थानीय तांत्रिक गुरु का शिष्य है और तीन रात पहले ही उसने श्मसान में जाकर एक तांत्रिक कर्मकांड पूरा करते हुए इसी खुखरी से एक पशुबलि चढ़ायी थी। उसके गुरू का कहना था कि यह खुखरी और नरमुंड पास रखने से उसकी साधना बहुत सफल होगी। मुझे धर्मकक्ष में फैलने वाली दूषित तरंगों का कारण अब समझ में आया। मेरे बहुत दबाव देने पर वह बाहर जाकर उस खुखरी और नरमुंड को किसी कंदरा में फैंक आया। तब कहीं उस "शांतिकुटीर" में व्याप्त अशांति की घुटन दूर हुई।

उस दिन अपराह्न देर तक धर्मपीठ पर बैठ कर ध्यान करता रहा। सायंकालीन धर्म-प्रवचन का समय समीप आते-आते देखा कि सारा वातावरण हिमगिरि की पावन पवन-लहरियों से धुलकर स्वच्छ, निर्मल हो गया है और पू. गुरुदेव की मैत्रीभरी धर्म-तरंगों से आप्लावित हो उठा है। प्रवचन शुरू करने के कुछ ही क्षण पहले हृदय-वस्तु पर ध्यान जाते ही देखा कि भवंग अत्यंत सजीव और संवेदनशील हो उठा है। ब्रह्मरंध्र का कपाट खुल गया है जिसमें पू. गुरुदेव की मंगल मैत्री की धर्म-तरंगें प्रवहमान हो रही हैं। इससे संपूर्ण तन और मन पुलक-रोमांच से भर गया। बोलना शुरू किया तो बिना रुके धाराप्रवाह बोलता ही चला गया। ठीक वैसे ही जैसे कि हिंदी में बोला करता था। प्रवचन पूरा हुआ तो देखा, पूरे एक घंटे बोल गया था। पांच मिनट के विश्राम के पश्चात बैठक फिर आरंभ हुई तो उसी प्रवाह में अंग्रेजी में लंबा आदेश दिया और देखा कि सभी साधक-साधिकाएं अत्यंत दत्तचित्त होकर ध्यानमग्न हो गये हैं। नौ बजे बैठक समाप्त हुई तो सबके चेहरे खिले हुए थे। मैं यह देख कर स्वयं विस्मय-विभोर था कि पू. गुरुदेव की मंगल मैत्री से ऐसा धर्मबल जागा जिससे नितांत असंभव लगने वाला कार्य किस प्रकार सहज ही संभव हुआ! यों अंग्रेजी का पहला शिविर अत्यंत आश्चर्यजनक ढंग से सफल हुआ। धर्म यही चाहता था। यही हुआ।

इसके बाद सभी शिविर द्विभाषी होने लगे। प्रतिदिन पूर्वाह्न और सायं हिंदी और अंग्रेजी प्रवचन होने लगे। सभी निर्देश दोनों भाषाओं में दिये जाने लगे। मानो विदेशियों के लिए धर्मगंगा का बांध खुल गया। सारी अड़चनें दूर हो गयीं। अब पहले से अधिक शिविर लगने लगे। अधिक साधकों वाले शिविर लगने लगे। शिविर-दर-शिविर विदेशियों की संख्या बढ़ती चली गयी। बोधगया, राजगीर, वाराणसी और कुशीनगर जैसे स्थानों में ऐसे अनेक शिविर लगे, जिनमें लगभग सारी संख्या विदेशियों की ही थी। भारत के अन्य भागों में लगने वाले शिविरों में भी इनकी संख्या पहले से कहीं अधिक होने लगी। धीरे-धीरे अनेक पश्चिमी देशों में इन शिविरों की चर्चा फैलने लगी। समूह के समूह विदेशी इन शिविरों में भाग लेने के लिए आने लगे। बहुधा स्थानाभाव से उन्हें प्रवेश भी नहीं मिलता था। अगले शिविरों तक प्रतीक्षा करनी पड़ती थी। चंद वर्षों में ही पश्चिम के लगभग अस्सी देशों के हजारों लोग शिविरों में भाग लेने के लिए आ गये। पड़ोसी थाईलैंड और श्रीलंका के लोग भी सम्मिलित होने लगे। यों लगा कि पू. गुरुदेव की भविष्यवाणी और धर्मकामना सार्थक होने का समय समीप आ रहा है। विपश्यना विद्या केवल भारत में ही नहीं बल्कि सारे विश्व में फैलेगी, शायद इसीलिए अंग्रेजी भाषा के शिविर लगने संभव हो सके हैं। इसके बिना बाहर देशों के लोगों के लिए विपश्यना का प्रसार संभव नहीं होता। मानो उन्हीं के लिए धर्मगंगा पर लगा हुआ बांध खुल गया और दोनों भाषाओं में कलकलनिनाद करती हुई धर्मगंगा अनेकों के हित के लिए प्रवहमान हो उठी। विपश्यना सारे विश्व के लिए मंगल का संदेश पहुँचाने लायक हुई। यह देख कर मन संतोषजन्य प्रसन्नता से भर उठा।

मंगलमित्र,
स. ना. गोयन्का.

विपश्यी वृद्धाश्रम

महाराष्ट्र सरकार के समाजकल्याण मंत्रालय के पहल और वित्तीय सहयोग पर वयोवृद्ध विपश्यी साधकों के स्थायी निवास के लिए थाना जिले के भिवंडी तालुका में खड़ावली रेल्वे स्टेशन के समीप, भातसा नदी के सुरम्य तट पर सोरगांव में एक वृद्धाश्रम का निर्माण हो रहा है जो कि चंद महीनों में बन कर तैयार हो जायगा।

५५ वर्ष तथा इससे अधिक आयु की महिला साधिका और ६० वर्ष तथा इससे अधिक आयु के पुरुष साधक, जिसने विपश्यना साधना के एक से अधिक १०-१० दिवसीय शिविरों में

भाग लिया है और नियमित साधना करते हैं, उन्हें यहां स्थाई निवास के लिए अनुमति मिल सकेगी। आश्रमवासी को सुख-सुविधापूर्वक रहने तथा भोजन एवं आवश्यक दवा इत्यादि की सुविधा प्राप्त होगी। आश्रम में केवल विपश्यी साधक-साधिकाओंको ही प्रवेश मिलेगा। नियमित विपश्यना साधना करने की पूरी सुख-सुविधा रहेगी जिससे कि वे अपना सांध्यकालीन जीवन शुद्ध धरम के पुनीत वातावरण में सुखपूर्वक विता सकें।

इस आश्रम से कुछ दूरी पर विपश्यना संस्थाओं द्वारा लगभग १५० एकड़ जमीन खरीदी जा रही है जहां पर कि लगभग ३३० फिट ऊंचा विराट विपश्यना स्तूप का निर्माण होगा, जिसमें कि ३३० फिट व्यास के गोलाकार विशाल धर्म-कक्ष में लगभग १०,००० साधकों को भगवान बुद्ध के अस्थि-अवशेषों की प्रभावशाली पावन तरंगों के बीच सामूहिक ध्यान करने की सुविधा होगी।

इस धर्म स्तूप के समीप ही १००० साधकों के निवास की सुविधा सहित विश्व में विपश्यना का सबसे बड़ा ध्यान केंद्र होगा।

वृद्धाश्रम के आश्रमवासी इन सुविधाओं का भी लाभ उठा सकेंगे और चाहें तो वहां सेवा देकर अपनी पुण्य पारमिताओं के संवर्धन का सुअवसर भी प्राप्त कर सकते हैं।

विपश्यी वृद्धाश्रम में स्थायी निवास के लिए आवेदन-पत्र १ मार्च १९९७ से लिए जायेंगे।

आवेदन के लिए – श्री डी. बी. धांडे, 'कृष्ण कमल', २रा माला, गोखले रोड, दादर(प.) मुंबई-४०००२८. फोनः ४२२६१२२ से संपर्क कर सकते हैं।

वृद्धाश्रम का पूरा पताः जीवन संध्या, मांगल्य संस्थान वृद्धाश्रम, सोरगांव, खड़ावली, ता. भिवंडी, जिला-थाना, (महाराष्ट्र).